जैन - दर्शन में मोक्ष की अवधारणा

(लेखक : डॉ. श्री. अमृतलाल गांधी)

जैन धर्म की बारहखड़ी नमस्कार महामंत्र से प्रारंभ होती है । इसमें सर्व प्रथम तीर्थंकर परमात्मा अरिहंतों की और द्वितीय नमो सिद्धाणं के पद में उन समस्त जीवात्माओं नमस्कार किया जाता है जो तीर्थंकरों द्वारा समय-समय पर बतलाये गये मार्ग का अनुसरण कर सिद्धावस्था को प्राप्त हुए हैं । इसीका पर्यायवाची शब्द मुक्ति या मोक्ष है ।

जैन : जिन का अनुयायी

"जैन दर्शन में मोक्ष" विषय पर विचार करने के पूर्व हमारे लिये "जैन" शब्द का सही अर्थ जानना आवश्यक है । हिन्दू शब्द जैसे जाति का वाचक है, बौद्ध शब्द जैसे व्यक्ति का वाचक है वैसे जैन शब्द किसी जाति या व्यक्ति का वाचक न होकर विशेष गुणों का वाचक है । "जैन" शब्द "जिन" से बना है । जैन धर्म का अर्थ है "जिन का धर्म" । "जिन" का अर्थ है "जीतने वाला" । जीतने का प्रश्न शत्रुओं का ही होता है, मित्रों का नहीं । तो ये शत्रु कौन है ? इसका उत्तर "उत्तराध्ययन सूत्र" की गाथा २३/८ में दिया गया है "एगप्पा अजिए सत्तू" अर्थात् अपनी अविजित आत्मा ही शत्रु है ।

हमारा शत्रु कोई अन्य नहीं है अपितु असंयम में बहती हुई राग द्वेष में कलुषित आत्मा ही हमारी शत्रु है । इसीलिये अन्य किसी को जीतने की आवश्यकता ही क्या है ? जो सबसे बड़ा शत्रु है उसे ही जीतना चाहिये । इस आत्म-शत्रु को अर्थात् आत्मा में रहे हुए राग, द्वेष के संस्कारों को, क्रोध, काम, लोभ को विकारों को जीतना यही सबसे बड़ी विजय है । "उत्तराध्ययन सूत्र" की ही गाथा ९/३६ में लिखा है "सव्वमप्पे जिऐ जियं" अर्थात् जिसने इस राग - द्वेषात्मक संसार को जीत लिया उसने सब कुछ जीत लिया । मेरी भावना प्रार्थना के भी प्रथम बोल यही है, "जिसने राग, द्वेष कामादिक जीते, सब जग जान लिया ।" अतः जो अपनी वासना को, अपने विचारों को, राग, द्वेष के संस्कारों को जीत लेता है, उन्हें जड़ मूल से समाप्त कर देता है, वह आत्मा वीतराग बन जाता है और उसे ही "जिन" अर्थात् विजेता कहा जाता है । उस जिन पुरुष, वीतराग भगवान् के आदर्शों पर, उनकी शिक्षाओं पर, उनके द्वारा कथित मार्ग पर जो चलता है, जो जिन का अनुगामी है, वही "जैन" है । "जैन" का जो उपदेश है वह है "जैन धर्म" । इस प्रकार जैन धर्म एक गुण वाचक शब्द है । उसमें इन्द्रिय विजय की, आत्म संयम की एवं मनोनिग्रह की ध्वनि गूंज रही है, संक्षेप में, यही जैन - धर्म का लक्षण है ।

जैन - धर्म : आत्मवादी दर्शन

वैदिक मान्यताओं से भिन्न, जैन - धर्म परमात्मवादी न होकर आत्मवादी है । वह सृष्टि के रचयिता या संचालक के रूप में ईश्वर जैसी किसी शक्ति को नहीं मानता । उसके अनुसार यह सृष्टि प्राकृतिक रूप से अनादि काल से चली आ रही है और अनन्तकाल तक चलती रहेगी । इस सृष्टि में अनेकों आत्माएं कर्म-बंधन के कारण भव भ्रमण करती रहती हैं । सभी आत्माओं पर विभिन्न प्रकार के कर्मों का बंधन है जिसके दूर होने पर सभी आत्माएं स्वयं परमात्मा स्वरूप बन सकती हैं ।

जैनधर्म का शाश्वत सिद्धान्त है :-

अप्पा कप्पा विकताय, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तम मित्रं च, दुप्प-ट्ठिय्यं सुप्पट्ठियं ॥

अर्थात् आत्मा ही सुख दुःख का करने वाला है, उसके फल भोगने वाला है, एवं उनसे मुक्ति पाने वाला है । जब तक आत्मा पर शुभ-अशुभ कर्मों का आवरण हैं, वह आत्मा मनुष्य, पशु, देव और नारकी की चार गतियों में भ्रमण करती रहती है । परन्तु जब आत्मा के कर्म बंधन समाप्त हो जाते हैं, वह इस भ्रमण से मुक्त हो जाती है और अनन्त सुख की मोक्षावस्था को प्राप्त हो जाती है ।

सुख : आत्मा का स्वभाव

प्रायः सभी दार्शनिकों के मतानुसार संसार की प्रत्येक आत्मा चाहे वह कहीं भी और किसी भी अवस्था में क्यों न रही हो, उसके अंतस्तल में सुख प्राप्ति की अभिलाषा रहती है । सुख आत्मा का स्वभाव है । इसलिये प्राणिमात्र अनादि काल से सुख प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील है । सुख प्राप्ति के संबंध में अनेक विचारकों एवं चिन्तकों ने अपने अपने दृष्टिकोण से विचार व्यक्त किये हैं और उसकी प्राप्ति के लिये धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ माने हैं । जिनकी दृष्टि में वर्तमान जीवन ही सबकुछ है और इह लोक के सिवाय परलोक एवं जन्मान्तर नहीं है, उन्होंने वर्तमान जीवन एवं उसी में भौतिक सुख प्राप्त करने के साधन अर्थ और काम इन दो पुरुषार्थो को ही माना और उनका लक्ष्य यह रहा कि –

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥

अर्थात् जबतक जीओ, सुख से जीओ, कर्जा करो और घी पीओ क्योंकि यह शरीर भस्म हो जायेगा । इसका कोई पुनरागमन नहीं है ।

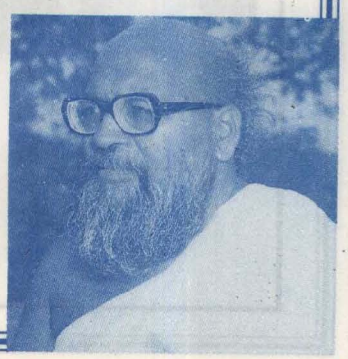

भारत में यह विचार-पक्ष चार्वाक दर्शन के नाम से प्रसिद्ध हुआ । पाश्चात्य जगत की विचारधारा में इसी प्रकार का दृष्टिकोण खाओ, पीवो और ऐश करो के नाम से प्रसिद्ध है । यह

खोटी साख भरे नहीं, करे न खोटे लेख ।
जयन्तसेन वह नर सुखि, सकल विश्व में देख ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्णतया भौतिकतावादी विचारधारा है जिसका संबंध मनुष्य के वर्तमान जीवन से ही है ।

परन्तु अन्य प्रबुद्ध विचारकों एवं चिन्तकों ने दृश्यमान जगत के अतिरिक्त उत्तम या अधम परलोक एवं मृत्यु के बाद पुनर्जन्म एवं जन्मांतर भी माना है । अतएव उन्होंने धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ माना और स्पष्ट किया कि परलोक और पुनर्जन्म में सुखप्राप्ति धर्म के पुरुषार्थ द्वारा ही संभव है । जैन-धर्म की मान्यता के अनुसार अर्थ और काम भौतिक सुख हैं जो क्षण-भंगुर हैं जबकि धर्म के मार्ग से प्राप्त मोक्ष का सुख अनन्त है । जैन दर्शन के अनुसार जिन का अनुयायी अपने आराध्य तीर्थंकर देव से सदैव इसी अनन्त सुख की प्राप्ति की कामना करता है । यह बात 'जय वीयराय' सूत्र की प्रथम गाथा से स्पष्ट होती है जो इस प्रकार है:-

"जय वीय राय । जय गुरु । होउ मम तुह प्रभावओ भयवं ।
भवनिव्वेओ मग्ग णुसारिया, इट्ठ फल सिद्दी ॥

अर्थात् हे वीतराग ! हे जगद्गुरु ? आपके प्रभाव से मुझे संसार से विरक्ति, मोक्ष मार्ग का अनुसरण तथा इष्टफल (अर्थात् मोक्ष के अनन्त सुख) की प्राप्ति हो ।

मोक्ष और मोक्षप्राप्ति के साधन :

मोक्ष पुरुषार्थ को स्वीकार करने वाले जैन, बौद्ध, नैयायिक, वैशेषिक और सांख्य-योग दर्शन हैं । जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक आत्मा यानि जीव अपने समस्त कर्म-कर्मफल, ज्ञान, मोक्षादि के लिये पूर्ण रूपेण स्वतंत्र है । जीव स्वयं अपना स्वामी है । उसका बंधन एवं मुक्ति किसी के रोष अथवा कृपा का परिणाम नहीं है अपितु स्वयं के कर्तव्यों एवं कार्यों का परिणाम है । प्रभुत्त्व शक्ति से युक्त जीव सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान व सम्यक् चारित्र के द्वारा चार घाती कर्मों को नष्ट करके जब अर्हत् दशा को प्राप्त होता है तब उसमें प्रभुत्त्व शक्ति का पूर्ण विकास होता है । फिर जब वह शेष चार अघाति कर्मों को भी नष्ट करके सिद्ध मुक्त हो जाता है तब वह साक्षात् प्रभु ही हो जाता है और उसका पुनर्जन्म नहीं होता ।

जैन-दर्शन के अनुसार आत्मा पर लगे हुए आठों प्रकार के कर्मों का क्षय हो जाना मोक्ष है और "संवर" तथा "निर्जरा" मोक्ष के साधन है । "संवर" का अर्थ है कर्म आने के द्वार को रोकना और "निर्जरा" का अर्थ है "पहले से आत्मा के साथ बंधे हुए कर्मों को क्षय करना" । बौद्ध दर्शन के अनुसार भव-संताप परम्परा का विच्छेद होना मोक्ष है और संसार को दुःखमय, क्षणिक एवं शून्य मय समझना मोक्ष का साधन है । नैयायिक, वैशेषिक, सांख्य-योग आदि दर्शनों ने भी दुःख का ध्वंस हो जाना मोक्ष माना है ।

जैन दर्शन के अनुसार मोक्ष का सीधा अर्थ है "समस्त कर्मों से मुक्ति" । इसमें अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कर्म आते हैं क्योंकि जैसे हथकड़ियाँ चाहे सोने की हो या लोहे की, मनुष्य को दोनों ही बन्धनयुक्त रखती है, उसी प्रकार जीव को उसके शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के कर्म बंधन में रखते हैं । अन्य शब्दों में, मोक्ष का अर्थ है "राग और द्वेष" दोनों का पूर्ण क्षय । वस्तुतः कर्म बंधन के कारणों एवं पूर्व से संचित कर्मों का पूर्ण रूप से क्षय हो जाना ही मोक्ष है । तात्त्विक दृष्टि से कहा जाय तो आत्मा का अपने शुद्ध स्वरूप में सदा के लिये स्थिर हो जाना ही मोक्ष या मुक्ति है ।

यह बात ध्यान रखी जाय कि मोक्ष का अर्थ जीव का अभाव अथवा विनाश नहीं है अपितु जीव या आत्मा का अपने शुद्धि स्वरूप में अपनी स्वतंत्र सत्ता रहित स्थित होना ही मोक्ष है । चौरासी लक्ष्य योनियों के भव भ्रमण की सांसारिक अवस्था में तो कर्म बंधन के कारण जीव वि-भाव रूप में रहता है किन्तु जब वह पुरुषार्थ द्वारा अपने कर्मों का क्षय कर देता है तब जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होकर वह स्व-भाव में स्थित हो जाता है और यही उसकी चरम परिणति है ।

अन्य शब्दों में मोक्ष आत्म विकास की पूर्ण अवस्था है । एक बार मुक्ति प्राप्त कर लेने पर यह आत्मा अनन्तकाल तक मुक्ति में ही रहती है और फिर लौटकर संसार में कभी नहीं आती है क्योंकि इस जीव को संसार में जन्म-मरण कराने एवं सुख दुःख देने के कारण जो कर्म होते हैं, मुक्ति की अवस्था में उनका सर्वथा अभाव होता है । मुक्ति में इस जीव के साथ किसी प्रकार का शरीर नहीं रहता और न ही उसको किसी प्रकार का भौतिक सुख प्राप्त करने की इच्छा ही रहती है । मुक्ति में यह आत्मा अनंत काल तक एक अनुपम, अतीन्द्रिय, आध्यात्मिक सच्चे सुख का उपभोग करती रहती है ।

चूँकि मोक्ष आध्यात्मिक विकास की पूर्ण अवस्था है और पूर्णता में कोई भेद नहीं होता है, अतः मोक्ष का भी कोई भेद नहीं है । मोक्ष या मुक्ति कोई स्थान विशेष भी नहीं है किन्तु आत्मा की शुद्ध चिन्मय स्वरूप की प्राप्ति है जिसे वैदिक दर्शन में "सच्चिदानंद" अवस्था कहा गया है । जैन दर्शन के अनुसार कर्म बंधनों से मुक्त होने पर आत्मा हल्की होने के कारण ऊपर की ओर उठती है और वह लोक के अग्रभाव में स्थित हो जाती

उपयोग उपभोग मध्य, अन्तर बड़ा विशेष ।
जयन्तसेन समझ लिया, फिर नहीं किंचित क्लेश ॥

डॉ. अमृतलाल गांधी
एम.ए., पी.एच.डी.,
एल.एल.बी.

कई पुस्तकों के लेखक एवं सामाजिक क्षेत्रमें भी अनुकरणीय कार्य । १९५४ में राजस्थान प्रशासनिक सेवा में बीसवें स्थान पर रहे । डेढ़ दर्जन पुस्तकों का लेखन विभिन्न जैन, सामाजिक व सार्वजनिक संस्थाओं के संचालक रहे । १९७४ में जोधपुर जिला महावीर निर्वाण समिति के मंत्री के रूप में प्रशंसनीय सेवाओं के लिये राज्य स्तर पर ताम्रपत्र से अलंकृत ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है जिसे जैन दर्शन में "सिद्ध शिला" कहा गया है । मुक्ति, निर्वाण, परिनिर्वाण, सिद्धावस्था आदि भी मोक्ष के ही नाम हैं ।

जैन दर्शन के अनुसार जीव एक द्रव्य है और द्रव्य लोक में रहते हैं । जीव का ऊर्ध्वगामी स्वभाव होने के कारण वह लोक के अग्रभाव में स्वतः ही पहुँच जाता है । दीपक की लौ का स्वभाव ऊपर जाता है, वैसे ही आत्मा का स्वभाव भी ऊपर जाता है । कर्म के कारण उसमें भारीपन आ जाता है । अतः वह भव-भ्रमण करती रहती है परन्तु कर्म मुक्त होने पर स्वाभाविक रूप से ही आत्मा की मोक्ष की दिशा में ऊर्ध्वगति होती हैं ।

जब तक कर्म पूर्ण रूप से क्षय नहीं होते, तब तक आत्मा का शुद्ध स्वभाव छिपा रहता है जैसे बादलों में सूर्य । परन्तु बादलों के हटते ही जैसे सूर्य पुनः अपने पूर्ण प्रकाश के साथ चमकने लगता है, वैसे ही आत्मा से कर्मों का आवरण हटते ही आत्मा अपने शुद्ध स्वभाव में चमकने लगती है । परन्तु सूर्य पर तो कभी कदाचित् पुनः बादल आ सकते हैं लेकिन आत्मा एक बार कर्म मुक्त होने के बाद फिर कभी कर्मों से आवृत नहीं होती है ।

जैन दर्शन के अनुसार "दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः" कहा गया है अर्थात् दर्शन, ज्ञान और चारित्र, मोक्ष के मार्ग है । इसमें हमें तप को और जोड़ना चाहिये क्योंकि महावीर सहित अनेक तीर्थंकरों एवं सिद्ध पुरुषों ने घोर तपस्या द्वारा ही अपने कर्मों की निर्जरा की है । परन्तु यह दर्शन, ज्ञान और चारित्र सही होना चाहिये । जिसके लिए जैन दर्शन में 'सम्यक्' शब्द का प्रयोग किया है । ज्ञान से तत्त्वों की जानकारी होती है और दर्शन से तत्त्वों पर श्रद्धा आती है । चारित्र से आते हुए कर्मों को रोका जाता है और तप द्वारा आत्मा से बंधे हुए कर्मों की निर्जरा होती है । अतः इन चारों उपायों से कोई भी रुकावट नहीं है । जिसने भी कर्म बंधन को तोड़कर आत्मगुणों को प्रकट कर लिया, वही मोक्ष प्राप्ति का अधिकारी है । जैन दर्शन में गुणों का महत्त्व है, व्यक्ति, जाति, लिंग, कुल, संप्रदाय आदि किसी अन्य का कोई महत्त्व नहीं है । इसीलिये कहा गया है कि "मनुष्य जन्म से नहीं, अपितु कर्म से महान् बनता है ।"

अतः निष्कर्ष रूप में, कहा जा सकता हैं कि जहाँ परमात्मवादी विचारधारा वाले धर्मों की मान्यता है कि परमात्मा का भक्त बनने में ही आत्मा की सार्थकता है, वहाँ जैन धर्म में आत्मा को परमात्मा और भक्त को भगवान बनने का पूर्ण अधिकार है । जीवन के इस चरम लक्ष्य को साधक अपनी ही साधना द्वारा चौदह गुण स्थानों में आत्मा के क्रमिक आध्यात्मिक विकास द्वारा प्राप्त कर सकता है । जैन दर्शन के अनुसार मुक्ति किसी दूसरे के हाथ की चीज नहीं है अपितु किसी भी आत्मा की मुक्ति उसी के हाथ में है । यहीं 'अपना हाथ जगन्नाथ' वाली कहावत लागू पड़ती है । निम्न श्लोक में यह बात भली क्राँति स्पष्ट हो जाती है :-

स्वयं कर्म करोत्यात्मा, स्वयं तत्फलमश्नुते ।
स्वयं भ्रमति संसारे, स्वयं तस्माद् विमुच्यते ।

अर्थात् आत्मा स्वयं अपना कर्म करती है और उसका फल भोगती है । अपने कर्म बंधनों के कारण ही वह संसार परिभ्रमण करती है तथा पुरुषार्थ द्वारा मुक्ति प्राप्त करती है ।

"मोक्ष में आत्मा अनन्त सुखमय रहता है, उस सुख की न कोई उपमा है और न कोई गणना ही ।" - भगवान महावीर

उन्मुक्त संवाद की अमोघ दृष्टि का शेष भाग (पृष्ठ ६९ से)

भारतीय जनता की संस्कृति का रूप सामासिक है । उसने धीरे-धीरे बढ़कर अपना आकार ग्रहण किया है । इस संस्कृति में समन्वयन की तथा नूतन बातों - सिद्धान्तों को पचानेकी, पचाकर आत्मसात कर लेनेकी अद्भुत योग्यता है । इसी शक्ति के कारण भारत विकसित होता रहा । इसके मूल में स्याद्वाद की दृष्टि है । स्याद्वाद जैन धर्मका अनूठा और उन्मुक्त दर्शन है । भाषा के आवरण में छिपे सत्य को अनावृत्त करने का माध्यम ही स्याद्वाद है । आचारांग सूत्र में (१/३/३) कहा गया है - सच्चस्स आणाए उवट्ठिए मेहावी मारं तरइ - अर्थात् सत्य की आज्ञा में प्रस्तुत - बढ़ता हुआ मेधावी साधक मृत्युको जीत लेता है । स्याद्वाद इस साधक की आरती उतारता है ।

आज के युग में वैचारिक विषमताने शीत युद्ध का वातावरण तैयार कर रखा है । अनेकांत तथा स्याद्वाद द्वारा समता, एकता, सहभाव और बंधुता का वातावरण तैयार किया जा सकता है । स्याद्वाद नयी मनुष्यता के लिए परम आश्वासक तत्त्व है - स्याद् इसीकी मदद से मानवता का उपकार हो सकता है ।

मधुकर-मौक्तिक

संकेतपूर्वक साध्य की ओर प्रेरित करने वाले, साध्य की ओर गतिशील करने वाले आराध्य अरिहंत परमात्मा हमें जीवन का सही स्वरूप समझाते हैं । हमें यदि अपने सच्चे स्वरूप को समझना है, तो अरिहंत परमात्मा को आराध्य बना कर अरिहंत परमात्मा की वाणी को अपने जीवन में उतारना होगा और उनके प्रवचन का मनन-चिन्तन करना होगा; फिर हमें यह मालूम हो जाएगा कि यद्यपि सिद्ध पद साध्य है, फिर भी अरिहंत परमात्मा उस साध्य की ओर हमें ले जाते हैं, इसलिए अरिहंत पद भी आराध्य है । यदि हम आराध्य के निकट जाते हैं और उन्हें समझते हैं, तो साध्य की दिशा भी मिल जाती है और जब साध्य की दिशा की ओर आगे बढ़ते हैं, तो सिद्धि भी प्राप्त हो जाती है ।

– जैनाचार्य श्रीमद् जयंतसेनसूरि 'मधुकर'

जिसने जीता स्वयं को, जीत लिया संसार ।
जयन्तसेन अखंड है, उस की जय जयकार ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org